19

संत छोटेनाथजी तथा मेरे ताऊ गयाप्रसादजी

मेरे ताऊजी श्री गयाप्रसादजी जिन्हें मैं बाबाजी कहता था और जो रायसाहब के पोष्यपुत्र बन जाने के कारण मेरे चाचा भी कहला सकते थे, परंतु जिन्हें इस पुस्तक में मैंने ताऊजी ही कहा है, मुझे बहुत प्यार करते थे। गोद चले जाने पर भी, मुझे रायसाहब का स्नेह-साहचर्य नहीं मिल सका था क्योंकि जब मैं 8 वर्ष का था तभी वे दिवंगत हो गये थे, परंतु इस अभाव की पूर्ति मेरे ताऊजी ने की। एक मातृहीन बालक के लिए वे माता और पिता दोनों बन गये। मेरे बनारस के कालेज के दिनों में भी वही मेरे संरक्षक के रूप में थे और मेरे व्यय की आपूर्ति भी उन्हींसे होती थी। उनका व्यक्तित्व और रूपरंग अत्यंत भव्य था। ललाट पर रामानंदी तिलक लगाये, दुकान में बैठे वे किसी देवमूर्ति के समान दिखाई देते थे। उनका हिसाब और बहीखातों का ज्ञान आश्चर्यजनक था। आज का एम. बी. ए. पास व्यक्ति भी इसमें उनसे होड़ नहीं ले सकता। ग्राहक के खरीदे हुए सैकड़ों किस्म के अलग-अलग कपड़े, जिनकी दर, खरीदे गये कपड़े का नाप और नाम भी अलग-अलग होते थे, जब मूल्य जोड़ने के लिए लाये जाते थे तो वे पहले से ही तुरत कुल मूल्य की घोषणा कर देते थे जो हर कपड़े का नाप और दर सुनकर उन्होंने मन में पहले ही जोड़ लिया होता था। वास्तुकला अर्थात् भवन-निर्माण की और भवन-निर्माण के आर्किटेक की जानकारी में उनकी तुलना नहीं थी। हमारी मंडावा की हवेली, गया नगर की हवेली तथा अन्य सभी भवन उन्होंने खड़े होकर स्वयं बनवाये थे। गया के भवन-निर्माण में जो दुर्लभ कलात्मकता देखी जा सकती है वह उनकी बुद्धि का ही चमत्कार है। यही नहीं, हीरे, मोती आदि नगीनों की भी उन्हें गहरी पहिचान थी और जौहरी लोग अक्सर अपने जवाहरात का मूल्य लगवाने उनके पास आते रहते थे। गया के पत्थर की खलों के भी वे विशेषज्ञ माने जाते थे और उस जमाने में भी चार-चार हजार रुपयों तक की पत्थर की खलें उन्होंने खरीदी थीं तथा खरिदवायी थीं।

उनके अपने जीवन के संस्मरण भी विचित्र थे। यह अध्याय यहाँ पर उनके निजी संस्मरणों की झलक दिखाने को ही विशेष रूप से लिखा जा रहा है। इन संस्मरणों में सत्य का अंश कितना है और कितनी अत्युक्ति है, यह कहना कठिन है फिर भी सत्य से ये घटनाएं बहुत दूर नहीं हैं क्योंकि इन घटनाओं से संबंधित बहुत-सी सामग्री आज भी उपलब्ध है तथा ताऊजी अत्यंत मितभाषी और सत्य के परम आग्रही थे। मैंने कभी उन्हें किसीके साथ उल्टी-सीधी बातें करते नहीं देखा।

मंडावा में एक संत छोटेनाथजी हो गये हैं जिनका बनाया हुआ कूआँ आज भी अपने मीठे जल से लोगों की प्यास बुझाता है। वह कूआँ और उसके पास की बगीची छोटेनाथजी के कूएँ के नाम से विख्यात हैं। ये संत छोटेनाथजी मेरे ताऊजी को पुत्रवत् स्नेह देते थे और इन्हींसे संबंधित घटनाएँ ताऊजी मुझे तथा अन्य व्यक्तियों को समय-समय पर सुनाया करते थे जिनमें से कुछ मैं अपनी याददाश्त से लिखने जा रहा हूँ।

एक बार मंडावा में ताऊजी बहुत बीमार पड़े और बुखार 103 डिग्री तक पहुँच गया। वे प्रतिवर्ष 2-3 बार गया से मंडावा अवश्य जाते थे और वहाँ महीनों निवास करते थे। उन्होंने घबराकर छोटेनाथजी को बुलाने एक सेवक को भेजा। छोटेनाथजी अपनी कुटिया में बैठे थे। उन्होंने संवादवाहक से कहा, 'जा, मैं आ जाऊँगा।' जब वह सेवक लौटकर आया तो देखकर हक्का-बक्का रह गया कि छोटेनाथजी पहले से ही मेरे ताऊजी के निकट बैठे हैं। बाद में उसने बताया कि वह सीधा छोटेनाथजी की कुटी से आ रहा है और अपने आने की बात कहकर छोटेनाथजी उसके सामने उठ कर विपरीत दिशा में चले गये थे। छोटेनाथजी ने मेरे ताऊजी से कहा कि बुखार मे कटोरा भर दही पी सकते हो ? मेरे ताऊजी ने कहा, 'महाराज यह तो मेरे साहस के बाहर है कि इतनी तेज बुखार में दही घोलकर पी जाऊँ।' तभी वहाँ पड़े हुए एक बड़े तरबूज को दिखाकर छोटेनाथजी ने कहा, 'तरबूज का पानी भी बुखार में बहुत फायदा करेगा।' इस बार ताऊजी विरोध न कर सके और चुप रहे। छोटेनाथजी ने अपने हाथ से तरबूज को काट कर और गरी निचोड़कर उसका पानी, पूरा कटोरा भरकर ताऊजी को पिला दिया और कहा 'सो रहो, वैद्यों के चक्कर में पड़ने की जरूरत नहीं है।' इसके बाद वे उठकर चले गये। उनके जाने के घंटे भर बाद ताऊजी पूर्ण स्वस्थ हो गये। गाँव के जो भी लोग मिलने आते, ताउजी उन्हें यह अदभुत वृत्तांत सुनाते नहीं थकते। इसके दूसरे दिन ही पुनः ताऊजी को तेज बुखार आया। इस बार ताऊजी के बुलाने पर छोटेनाथजी नहीं आये और उन्होंने कहला भेजा कि गयाप्रसाद से कह दो 'बुखार उसने खुद बुलाया है। संत महात्माओं के चमत्कार की डौंड़ी नहीं पीटी

जाती। अब तो उसे पूरे बीस दिन इस बुखार को झेलना ही पड़ेगा।' छोटेनाथजी की भविष्यवाणी के अनुसार बीस दिनों के बाद ही वह बुखार उतरा। ऐसे ही एक दूसरी बार बीमारी के समय छोटेनाथजी ताऊजी के पास बैठकर उनकी हथेली हाथ में लेकर अँगूठे से रगड़ने लगे। बीमारी बहुत भयंकर थी और कई पंडितों ने मारकेश की दशा बताई थी। मारकेश ज्योतिष की भाषा में मृत्यु-योग का नाम है। छोटेनाथजी के अँगूठे से रगड़ने के बाद ताऊजी ने अपनी हथेली की ओर देखा और देखकर चकित रह गये। उनकी हथेली की रेखायें बदली हुई थीं। इसके बाद छोटेनाथजी ने उठते हुए कहा - 'गयाप्रसाद, ज्योतिषियों की बात पर विश्वास मत करना। तुम्हें बहुत दिन सुखी और स्वस्थ रूप में संसार में रहना है।' कहने की आवश्यकता नहीं कि ताऊजी दूसरे दिन से ही स्वस्थ होने लगे और कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ होकर गया लौट आये।

एक अन्य घटना जो छोटेनाथजी के संबंध में मेरे ताऊजी बताते थे, वह सारे गाँव से संबंधित थी। मंडावा में चेचक का भीषण प्रकोप हो गया। प्रतिदिन कई बच्चों की मृत्यु हो रही थी। गाँववाले घबराकर मेरे ताऊजी को साथ लिये छोटेनाथजी की कुटिया में पहुँचे और उनसे इस संकट से मुक्ति दिलाने की याचना करने लगे। छोटेनाथजी ने मेरे ताऊजी की ओर देखते हुए कहा, 'गयाप्रसाद, इन लोगों से कह दो, मैं कल ही इस हरामजादी को गाँव के बाहर निकाल दूँगा। ये आराम से अपने घरों को लौट जायँ।' दूसरे दिन गाँव के लोगों ने चकित होकर देखा कि छोटेनाथजी एक कम्बल ओढ़े, बाजार के बीच में एक पेड़ के नीचे लेटे हैं। उनके शरीर पर फफोले उगे हुए थे। गाँव वालों को निकट आते देखकर उन्होंने इशारे से मना कर दिया और मेरे ताऊजी को पुकार कर कहा, 'गयाप्रसाद, इनसे कह दो, कोई मुझे नहीं छेड़े।' इस प्रकार तीन दिनों तक लेटे रहने के बाद जब छोटेनाथजी कैम्बल हटाकर खड़े हुए तो उनके शरीर पर फफोलों का चिह्न भी नहीं था। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, 'अब, इस गाँव में आने का साहस यह दुष्टा नहीं करेगी। सब लोग आनंद से अपने घरों में रहें।' उस दिन के बाद से गाँव में चेचक का नाम भी नहीं सुना गया।

इसी प्रकार एक बार गाँव में पीने के पानी की समस्या लेकर लोग मेरे ताऊजी के साथ छोटेनाथजी के पास गये। यद्यपि हम लोगों ने गाँव के पीने के पानी के लिए एक छोटे से हनुमानजी के मंदिर के साथ एक कूआँ बाजार के बीच में बनवाया था जिसे हमारे परिवार के नाम पर **गयाजीवाले साहों का कूआँ** कहा जाता था, पर उसका पानी खारा निकला था और पीने के योग्य नहीं था। वह केवल कपड़े धोने के काम आता था। कुछ गाँववालों ने साहों के कूएँ के

बदले उसे खारिया कूआँ भी कहना शुरू कर दिया था। कूएँ की जगत लाल पत्थरों की बनी रहने के कारण कोई-कोई उसे लालिया कूआँ भी कहते थे। मंडावा में नगरपालिका के स्थापित कर दिये जाने पर और पूरे गाँव में सरकारी जल-व्यवस्था हो जाने पर नगरपलिका के अधिकारी ने मुझसे इकरारनामा करके उसे तोड़कर उसकी विस्तृत भूमि पर मेरे परदादा के नाम से पार्क बनाने का वादा किया। परंतु बाद में आनेवाले नगरपालिका के अध्यक्ष ने उस पार्क को दूसरे के नाम से कर दिया। मैंने गाँववालों के बहुत उकसाने पर और मंडावा के ठाकुर साहब (पूर्व राजा) के कहने पर भी नगरपालिका पर इस संबंध में कानूनी कारवाई करना उचित नहीं समझा और कूएँ की जगत तथा मंदिर से निकले पचासों हजार रुपयों के प्रस्तरखंडों को भी धर्मादे का समझकर नगरपालिका के लिए ही छोड़ दिया।

अब मैं अपने पूर्व प्रसंग पर लौटता हूँ। गाँववालों ने छोटेनाथजी से अपने पेयजल के कष्ट का वर्णन करते हुए जब कहा, 'महाराज, आपकी छत्रछाया में रहते हुए हम यह कष्ट भोगें, क्या यह उचित है।' तो छोटेनाथजी ने हँसते हुए कहा 'चलो, आज तुम्हारे कष्टों का अंत कर देते हैं' और उठ खड़े हुए। उन्होंने अपना दंड सँभाला और गाँववालों को पीछे आने का संकेत करते हुए एक बालू के टीले पर चढ़ गये तथा अपना दंड बालू में गाड़ दिया। गाँववालों को उन्होंने पुकार कर कहा कि यह है मीठा पानी का स्थान। यहाँ कूआँ खुदवाओ। उस स्थान पर कूआँ खोदा गया और अत्यंत मीठे पानी का स्रोत उपलब्ध हो गया। आज भी मंडावा में वह कूआँ उस स्थान पर छोटेनाथजी के कूएँ के नाम से विख्यात है और उसके बगल की बगिया में लोग संध्या समय इकट्ठे होकर आनंद-मंगल मनाते हैं तथा भजन-कीर्तन करते हैं।

एक और घटना जो मेरे ताऊजी छोटेनाथजी के विषय में सुनाते थे वह इस प्रकार है। एक बार मेरे ताऊजी ने, जब वे गया में थे, सुना कि छोटेनाथजी मंडावा में लीवर की बीमारी से गंभीर रूप से अस्वस्थ हैं। उन्होंने गया के सुप्रसिद्ध डाक्टरों की राय से लीवर के लिए एक दवा मंडावा ले जाने का निश्चय किया और उस दवा की एक बोतल भरवा ली। बड़े परिश्रम से तीन-चार दिनों का सफर, ट्रेन और ऊँट पर, दवा की बोतल हाथ में लिए, उन्होंने तै किया। उन दिनों मंडावा जाने के लिए ट्रेन-यात्रा के बाद बहुत दूर तक ऊँटों पर जाना पड़ता था। ट्रेन तो आज भी वहाँ नहीं पहुँच सकी है, पर सड़कों के बन जाने से मोटर की यात्रा उपलब्ध है। दूसरी कठिनाई यह भी थी, जो आज भी थोड़ी-बहुत है, कि मंडावा पहुँचने के लिए कई स्थानों पर ट्रेन

बदलनी होती थी। ऐसी कठिन परिस्थितियों में हाथ में बोतल लिए कि कहीं वह टूट न जाय और उसकी दवा बह न जाय, तीन-चार दिन ट्रेन और ऊँट की यात्रा करना कितना कठिन था, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। खैर, यात्रा पूरी हुई और ताऊजी छोटेनाथजी के दरबार में उपस्थित हुए। ताऊजी को देखते ही छोटेनाथजी बोल उठे, 'आओ गयाप्रसाद, तुम्हारी ही प्रतीक्षा में रुका हुआ था।' ताऊजी ने चरण-स्पर्श करके दवा की बोतल उनकी खाट के पास रख दी तथा कहा, 'महाराज, आपकी चिकित्सा के लिए एक विशेष डाक्टरी औषधि गया से लाया हूँ। डाक्टरों ने यह आश्वासन दिया है कि लीवर की बीमारी के लिए यह रामबाण है।' छोटेनाथजी ने कुतूहल से, उठते हुए कहा - 'बहुत अच्छा, देखेंगे' और खाट पर बैठे हो गये तथा खड़े होने का प्रयास करने लगे। उसी प्रयास में उनके पैर की ठोकर उस बोतल को लगी और वह टूट गयी तथा सारी दवा बह गयी। ताऊजी का जी छोटा हो गया और वे गुमसुम होकर बैठे रहे। घंटे-दो-घंटे बाद, जब सब लोग चले गये तो छोटेलालजी ने ताऊजी को अकेले में संबोधित करते हुए कहा, 'गयाप्रसाद, तू समझता है कि तेरी दवा मुझको अच्छा कर देती। मैं चाहूँ तो आज ही इस रोग को फूँक मारकर उड़ा दे सकता हूँ। पर अब मेरी अवधि पूरी हो गयी है और मैंने जाने का निश्चय कर लिया है। केवल तुझसे मिलने को ही मैं इस शरीर में रुका था। तुझको जाने के पहले एक बात और बता देना चाहता हूँ। तू जानता है, हम संत लोगों के हृदय में किसी प्रकार का मोह और माया नहीं रह सकती। फिर भी प्रारंभ से तेरे प्रति मेरे मन में एक दुर्बलता और मोह की हलकी-सी झलक रही है। उसका कारण तुझे बताता हूँ। इस जन्म के पचास जन्म पूर्व, तू मेरा पुत्र था। उस संबंध का मोह इस जन्म में भी मुझे तुझसे बाँधे था। उसे तुझको बताकर अब मैं निश्चिंत हो गया हूँ और अब तुझसे भी विदा लेता हूँ। लोगों से कह दे मेरे अंतिम संस्कार की तैयारी करें।' इसके दूसरे दिन ही छोटेनाथजी ने समाधि ले ली। उनकी समाधि आज भी मंडावा में भक्तों के द्वारा पूजित है।

मेरे ताऊजी के जीवन की अनेक घटनाएं मेरे जीवन से जुड़ी हुई हैं। उनके अंतिम समय की झाँकी यहाँ देने का लोभ मैं नहीं संवरण कर सकता। ताऊजी ने 1948 में शरीर छोड़ा था जब मैं कालेज की शिक्षा समाप्त कर 24 वर्ष की पूर्ण वयस्कता प्राप्त कर चुका था। उनके अंतिम समय में भी सौभाग्य से मुझे उनके पास निरंतर रहने का अवसर मिल सका था, इस लिए वह दृश्य आज भी मेरी स्मृति में ज्यों का त्यों सुरक्षित है। उन्हें मधुमेह की बीमारी प्रारंभ से

ही थी और उसके लिए एक डाक्टर तो घरेलू डाक्टर की तरह दिन में कई-कई बार आ कर इंजेक्शन आदि दे जाता था। अंतिम दिनों में उनका चलना-फिरना बंद हो गया था परंतु अन्य सारी चेष्टाओं और मस्तिष्क की चेतना में कोई अंतर नहीं आया था। मृत्यु के पहले दिन मैं सारे दिन और रात में देर तक उनके सिरहाने बैठा था। उनके पाँव बर्फ की तरह ठंडे हो गये थे और वह ठंडक धीरे-धीरे बढ़ती आ रही थी। वे माला हाथ में लिये निरंतर भगवान के नाम का जाप कर रहे थे और घंटे-आध-घंटे बाद मुझे पूछ भी लेते थे कि अब पाँव की ठंडक कितनी ऊँची पहुँची है। उन्हें देखकर मुझे सुकरात के विषपान के दृश्य की याद आती थी। सुकरात भी इसी तरह आनेवाली मृत्यु की तरफ से निश्चिंत था। गीता में भगवान ने इस संबंध में आत्मा को अमर माननेवाले और आत्मा को नश्वर माननेवाले दोनों के भय का निवारण कर दिया है—

देहिनोऽस्मिन यथा देहे कौमारं, यौवनं, जरा
तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति,

तथा

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि

मेरे ताऊजी ने, जब पाँव की ठंडक कमर तक पहुँच गयी तो मुझसे कहा, 'मेरे गाँव मंडावा में प्रत्येक ब्राह्मण के घर नावाँ-देहली के रुपये भिजवा देना तथा मंडावा के राजासाहब को मेरी जुहार कहला देना। इसके बाद उन्होंने मुझे बताया कि मुझे और तो कोई दुःख नहीं है, केवल रामनिवास (उनका पहला पुत्र जो मेरे पहले रायसाहब की गोद गया था और जिसकी विद्यार्थिकाल में ही मृत्यु हो गयी थी) तथा श्रीकिसन (ताऊजी के एक मात्र पुत्र बनारसीलाल का ज्येष्ठ पुत्र जिसकी मृत्यु भी 16-17 वर्ष की अल्पावस्था में हो गयी थी) की मृत्यु का दुःख मैं अपने कलेजे पर लेकर जा रहा हूँ। इसके बाद रात में वे पूछने लगे कि एकादशी हुई कि नहीं। मैं समझ रहा था कि अभी दशमी है और एकादशी कल होगी यद्यपि तिथि टूट जाने के कारण एकादशी लग चुकी थी। इसलिए मैंने कह दिया कि अभी दशमी है, कल एकादशी हो जायगी। इसके बाद वे फिर भगवान के सुमिरन में लीन हो गये और दूसरे दिन भोर में बिना किसी कष्ट के उन्होंने शरीर छोड़ दिया। उनके अंत समय में भी मैं उनके पास खड़ा था। हम लोगों ने आधी रात के बाद उन्हें भूमि पर कंबल बिछाकर लिटा दिया था।

उनके शरीरांत का दृश्य याद करके तुलसीदास की वह पंक्ति मेरे मानस में बारबार कौंध जाती है —

सुमन-माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानइ नाग

सच कहूँ तो उनके देहत्याग को देखने के बाद मेरे मन से मृत्यु का भय दूर-सा हो गया है। मैं समझता हूँ, इसी प्रकार वीर पुरुष बिना किसी घबराहट, चिंता, दु:ख, भय या दुश्चिंता के, शरीर त्याग देते हैं। मृत्यु के प्रति यह विधायक (Positive) दृष्टिकोण गहरी आस्था से ही प्राप्त होता है। मेरे ताऊजी तथा उनके पहले मेरे गोद लेनेवाले पिता, रायसाहब, दोनों ऐसे ही पुण्यात्मा और भगवान के प्रति अटूट श्रद्धा के धनी थे। गोस्वामी तुलसीदासजी के संबंध में कहा जाता है कि मृत्यु के पूर्व उन्होंने यह दोहा कहा था —

राम नाम जस बरनि के, भयो चहत अब मौन
तुलसी के मुँह दीजिए, अब ही तुलसी सोन

तुलसीदास के लिए तो यह श्रद्धा सहज ही सोची जा सकती है परंतु औरों के लिए कितनी कठिन है, यह सभी जानते हैं। भगवान की करुणा का अंत नहीं है और जन्म देने का जैसे वे ही चुनाव करते हैं वैसे ही मृत्यु का चुनाव भी उनके ही हाथ में है। यदि और कुछ नहीं, केवल गीता के दूसरे अध्याय को ही हृदयंगम कर लिया जाय तो मृत्यु का भय सर्वथा दूर हो जाता है। परंतु यह कहना जितना आसान है, करना उतना ही कठिन है। जानने और होने का अंतर मिटाना सहज नहीं है।

सोई जानइ जेहि देहु जनाई
जानइ तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई

मैंने अपने ताऊजी के मृत्यु के दृश्य के परिप्रेक्ष्य में अपने संबंध में एक कविता लिखी थी जो यहाँ देनी प्रासंगिक होगी —

मैं उन सीढ़ियों पर आकर बैठ गया हूँ
जिनपर चढ़कर तू ऊपर गया था।
तब मैं नया-नया था
और यह नहीं जानता था कि तू अब कभी लौटकर नहीं आयेगा,
तेरा अस्तित्व मेरे लिए सपना रह जायेगा;
तेरे ओंठों पर व्यथाभरी मुस्कान

और आँखों में कातर उदासी थी,
तू हर सीढ़ी से पलटकर मुझे देख लेता था,
जाने वह कैसी गलफाँसी थी
जो तुझे खींचे लिये जा रही थी।
प्रतिक्षण मुझसे दूर किये जा रही थी!
फिर भी तेरे मुख पर स्वर्गीय प्रेम का प्रकाश था,
तू भले ही मुझे छोड़कर जा रहा था
पर तुझे अपनी अमरता का विश्वास था।
ओ पिता!
मैं भी तेरी तरह ऊपर जाने से नहीं डरूँगा,
तू यदि अमर है तो मैं ही कैसे मरूँगा!